THE ECONOMIC TIMES

Date:11-01-24

Pilgrims' Progress Across Sacred India

ET Editorials

The soon-to-be-inaugurated Ram Mandir in Ayodhya has turned the small UP town into a hot pilgrimage destination. While Ayodhya is steeped in the back story of an ancient kingdom's capital, now it's all set to be plugged into India's 21st-century hospitality and tourism industry — and the sub-sector of religious tourism. That India has always had a burgeoning spread of pilgrimage destinations of all faiths is plain, and glorious, to see. Less obvious is how religious tourism in this country punches way below its considerable weight. The refashioning of Ayodhya — from its redesigned railway station to its sparkling new airport to its range of hotels, including high-end ones — can serve as a template for religious sites.

India needs to provide its plethora of pilgrims comfort along with the available spiritual solace. And, in the bargain, Indian tourism will make considerable material gains. The ₹85,000 crore infrastructure investment in and around Ayodhya underscores the seriousness with which this temple town is viewing its visitors.

If Rome can provide splendour as it leads the tourist — both religious and secular — into St Peter's Basilica in Vatican City, or if Mecca can have first-world facilities and infrastructure on the way to the Kaaba, there is no reason why the likes of Mathura, Ajmer, Kashi, Bainguinim, Sanchi, Hazratbal, Sarnath, Amritsar and other pilgrim sites in India can't provide equal comfort to the tirth yatri. Attention to logistics — flights and roads, and hotels — are integral to this makeover. More than 60% of India's tourism is religion-based. In 2022, 1,433 million domestic tourists visited pilgrimages. Rising affluence will require retaining top-tier Indian tourists. Ayodhya may well provide a blueprint.

THE HINDU

Date:11-01-24

A change for the worse

India and the Maldives should see the benefits of closer ties

Editorial

The rapid decline in ties between India and the Maldives, just a month after Prime Minister Narendra Modi met with the newly elected Maldivian President Mohamed Muizzu, should set alarm bells ringing.

The trigger came from tweets by three Maldivian Ministers, attacking Mr. Modi for promoting the Lakshadweep islands during his recent sojourn there at a perceived cost to the Maldives and for his close ties with Israel; the Ministers also made derogatory remarks about Indians. The tweets have been deleted, the Ministers suspended, and the Maldivian government has distanced itself from them, but the damage has been done. The respective Ambassadors were summoned. Hurt Indians have crowded social media sites calling for an economic "boycott" of the Maldives — Indian tourists make up the most arrivals post-COVID-19. However, the underlying reasons run deeper, and could have a broader impact on India-Maldives relations and the neighbourhood, accruing to the change in government in Male. Mr. Muizzu rode to power on the back of the PPM's "India Out" campaign. Despite its disappointment with the win of 'anti-Indian forces', given the warm relationship it shared with his predecessor Ibrahim Solih, the Modi government sent a Minister to his swearing in, and there was a Modi-Muizzu meet at the COP28. However, Mr. Muizzu chose Turkey as his first bilateral destination, and is now visiting China — becoming the first President not to make India his first priority. Even President Yameen, who began the "India Out" movement and cozied up to Beijing, visited Delhi first in 2014. Mr. Muizzu has continued to press India on the withdrawal of its military personnel, even though India has clarified their role.

With the calls for boycotts and rising hypernationalistic rhetoric, Delhi and Male need to take a step back and reassess their responses. Mr. Muizzu can ill-afford to antagonise India, given its proximity, economic might and historical position as a net security provider in the Indian Ocean, something Maldives has relied on. India too must see the futility of muscling in a much smaller neighbour, however egregious the provocation. The last few years of ties between the Solih government and Delhi show the benefits of a stronger relationship: India's infrastructure forays and development projects in the islands, an intense strategic partnership, support during the COVID-19 pandemic, and cooperation on the international stage. For India, in a region that sees several elections this year, it is paramount to ensure that domestic political changes in the neighbourhood do not change the basic structure of bilateral ties, or affect regional stability.

दैनिक भास्कर

Date:11-01-24

पूरी दुनिया पर असर डालते हैं कुछ बड़े नेताओं के निर्णय

थॉमस एल. फ्रीडमैन, (तीन बार पुलित्ज़र अवॉर्ड विजेता एवं 'द न्यूयॉर्क टाइम्स' में स्तंभकार)

मैं 1995 से द टाइम्स का विदेशी मामलों का स्तम्भकार रहा हूं। जो एक सबक मैंने इस अवधि में सीखा, वो यह है कि अच्छे-बुरे दौर आते-जाते रहते हैं, लेकिन वे राजनीति की दुनिया के बड़े खिलाड़ियों द्वारा लिए फैसलों से तय होते हैं। मैंने अपने कार्यकाल के पहले दशक में कुछ बुरे निर्णय देखे, मुख्य रूप से 11 सितम्बर के हमले पर अमेरिका की प्रतिक्रिया। लेकिन साथ ही कुछ आशा जगाने वाले निर्णय भी थे, जैसे मिखाइल गोर्बाचेव के प्रयासों से रूस और पूर्वी यूरोप में लोकतंत्र का जन्म, यित्ज़ाक राबिन और यासिर अराफात के प्रयासों से ओस्लो शांति प्रक्रिया, डेंग जियाओपिंग

के निर्णयों के कारण चीन का दुनिया के लिए तेजी से खुलना, डॉ. मनमोहन सिंह के प्रयासों से भारत द्वारा वैश्वीकरण को अपनाना, यूरोपीय संघ का विस्तार, अमेरिका के पहले अश्वेत राष्ट्रपति का चुनाव और दक्षिण अफ्रीका का एक बहुजातीय लोकतंत्र के रूप में विकास- ये सब अच्छे निर्णयों का परिणाम थे। इस बात के भी संकेत मिल रहे थे कि दुनिया अंततः जलवायु परिवर्तन को गम्भीरता से लेने लगी है।

कुल मिलाकर, इन घटनाओं ने विश्व-राजनीति को एक अधिक सकारात्मक राह पर चलने के लिए प्रेरित किया था। ऐसी भावना जगी थी कि दुनिया के लोग आपस में एक-दूसरे से ज्यादा जुड़े हुए हैं और वे शांतिपूर्ण तरीके से अपनी पूरी क्षमताओं का एहसास कर पा रहे हैं। लेकिन पिछले कुछ वर्षों से मैं इससे विपरीत महसूस कर रहा हूं। मेरे अधिकांश लेखों में बड़े नेताओं के बुरे निर्णयों की निंदा की जाती है, जैसे कि व्लादिमीर पुतिन की सख्त तानाशाही और आक्रामकता जिसकी परिणति यूक्रेन पर उनके क्रूर आक्रमण में हुई; चीन में बढ़ते खुलेपन पर शी जिनपिंग का अंकुश; इजराइल में धुर-दक्षिणपंथी सरकार का चुनाव; जलवायु परिवर्तन के व्यापक प्रभाव; दुनिया के लोकतंत्रों का अधिनायकवादी नेताओं की ओर बढ़ता झुकाव आदि।

1978 में जब मैंने पत्रकारिता शुरू की, तब तीन स्तम्भ ऐसे थे, जिनकी पर दुनिया की स्थिरता टिकी हुई थी- एक मजबूत अमेरिका जो नाटो जैसे बहुपक्षीय संस्थान की मदद से एक उदार विश्व-व्यवस्था की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध है, उभरता हुआ चीन, और यूरोप व विकासशील दुनिया में ज्यादातर सीमारेखाओं पर स्थिरता। ये तीनों ही स्तम्भ पिछले दशक में बड़े नेताओं के खराब निर्णयों से प्रभावित हुए हैं। अमेरिका और चीन में शीत युद्ध चल रहा है और अमेरिका अब पहले जैसा भरोसेमंद नहीं रह गया है। जब रूस ने यूक्रेन पर धावा बोला था तो मैंने इसे पहला वास्तविक विश्व युद्ध कहा था, वहीं हमास से इजराइल की लड़ाई दूसरे विश्व युद्ध जैसी है। इसका कारण यह है कि ये युद्ध वास्तविक रणभूमियों के साथ ही डिजिटल मोर्चे पर भी लड़े जा रहे हैं और उनका असर दूरदराज के इलाकों तक महसूस किया जा रहा है। अर्जेंटीना के किसानों को ही लें, जो यूक्रेन और रूस से उर्वरक की आपूर्ति अचानक बंद हो जाने से स्तब्ध रह गए थे। या दुनिया भर के युवा टिकटॉक यूजर्स का गाजा से आए किसी 15 सेकंड के फीड पर देखी गई किसी चीज से क्रोधित होकर जारा और मैकडॉनल्ड्स जैसी ग्लोबल चेन्स का बहिष्कार करना। या एक इजराइल-समर्थक हैकर समूह द्वारा पिछले दिनों ईरान के लगभग 70 प्रतिशत गैस स्टेशनों को बंद कर देना। और भी बहुत कुछ।

लेकिन इससे पहले कि हम बहुत अधिक निराशावादी हो जाएं, याद रखें कि ये सब केवल किन्हीं राजनेताओं के निर्णयों का ही परिणाम हैं। और टिप्पणीकारों के रूप में हमें कभी भी उस कायर और बेईमान भीड़ का शिकार नहीं बनना चाहिए, जो कहती है कि इसके सिवा कोई विकल्प नहीं था। यहां तक कि 7 अक्टूबर की घटना, जिसके बाद हमास और इजराइल की लड़ाई शुरू हुई, वह भी अवश्यम्भावी नहीं थी। गाजा युद्ध के बारे में जो सबसे अज्ञानतापूर्ण बातें कही गई हैं, उनमें से एक यह है कि हमास के पास इसके सिवा कोई और विकल्प नहीं था और 7 अक्टूबर के कत्लेआम, 10 माह के बच्चे से लेकर 86 साल के बुजुर्ग तक के अपहरण और इजराइली महिलाओं से दुष्कर्म को यह कहकर माफ किया जा सकता है कि इसे जेल से छूटे अपराधियों जैसे किसी गिरोह ने अंजाम दिया था। 2007 में गाजा में फतह सरकार को हिंसापूर्वक हटाकर वहां काबिज होना और ओस्लो समझौते व पेरिस प्रोटोकॉल को मानने से इनकार करना हमास का सोचा-समझा फैसला था। इसी के चलते इजराइल ने गाजा की नाकेबंदी की और टकरावों, संघर्ष-विरामों का जो दौर शुरू हुआ, वह 7 अक्टूबर के अंजाम तक पहुंचा।

दैनिक जागरण

Date:11-01-24

पश्चिमी देशों को चुनौती देता ब्रिक्स

डॉ. एनके सोमानी, (लेखक अंतरराष्ट्रीय मामलों के प्राध्यापक हैं)

वैश्विक अर्थव्यवस्था के एक चौथाई हिस्से का प्रतिनिधित्व करने वाले देशों के समूह ब्रिक्स का विस्तार हो गया है। मिस्र, इथियोपिया, ईरान, सऊदी अरब और संयुक्त अरब अमीरात (यूएई) के इस समूह का हिस्सा बनने के बाद पांच सदस्य देशों वाले ब्रिक्स की सदस्य संख्या बढ़कर दस हो गई है। हालांकि अर्जेंटीना ने भी पूर्णकालिक सदस्यता के लिए आवेदन किया था, लेकिन वहां के नए राष्ट्रपति जेवियर मिलेई ने ऐन वक्त पर यह कहते हुए अपना प्रस्ताव वापस ले लिया था कि हमारे लिए सदस्यता का यह सही समय नहीं है। मालूम हो कि पिछले वर्ष अगस्त में जोहानिसबर्ग में आयोजित ब्रिक्स शिखर सम्मेलन में समूह के नेताओं ने एक जनवरी से अर्जेंटीना समेत छह देशों को इससे जोड़ने के प्रस्ताव को मंजूरी दी थी। इससे पहले समूह में सिर्फ ब्राजील, रूस, भारत, चीन और दक्षिण अफ्रीका शामिल थे।

पश्चिम एशिया एवं उत्तरी अफ्रीका के देशों के ब्रिक्स का हिस्सा बनने के बाद अब ब्रिक्स की क्षेत्रीय गतिशीलता को बदलने की क्षमता बढ़ गई है। अमेरिका और यूरोप के आर्थिक साम्राज्य को चुनौती देने वाले देशों के एक मंच पर एकत्रित होने से पश्चिमी देशों के माथे पर भी चिंता की लकीरें दिखने लगी हैं। इसकी बड़ी वजह यह है कि ब्रिक्स देशों की जीडीपी वृद्धि काफी तेज है, जबकि विकसित देशों की वृद्धि थम सी चुकी है। वैश्विक जीडीपी में पश्चिम एशिया एवं उत्तरी अफ्रीका के देशों की हिस्सेदारी 2011 में 20.51 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 2023 में 26.62 प्रतिशत हो गई। वैसे जिस तरह से अमेरिका और यूरोप के प्रभाव से निकलकर ये देश एक मंच पर आ रहे हैं, उससे यह सवाल उठने लगा है कि अन्य संगठनों की तरह कहीं ब्रिक्स का विस्तारित रूप भी आपसी कलह का केंद्र न बन जाए। यह सवाल इसलिए अहम हो जाता है, क्योंकि ब्रिक्स की दो बड़ी शक्तियों चीन और भारत के बीच संबंध हमेशा से उतार-चढ़ाव वाले रहे हैं। इसका एक कारण यह भी है कि अमेरिका के कथित आर्थिक आभामंडल को भेदकर जो देश ब्रिक्स का हिस्सा बने हैं या बनना चाहते हैं, उनमें से कुछ देश चीन के प्रभाव में आ सकते हैं। भारत के लिए यह स्थिति सहज नहीं होगी।

पिछले कुछ वर्षों में ब्रिक्स जिस तरह वैश्विक आर्थिक विकास का उत्प्रेरक बनकर उभरा है, उससे विकासशील देशों को इसमें अपना भविष्य दिखने लगा है। इन्हें ब्रिक्स में दोतरफा लाभ नजर आ रहा है। पहला, आर्थिक और दूसरा, रणनीतिक। दोनों ही स्तर पर ब्रिक्स के सदस्य देशों के लिए यह फायदे का सौदा हो सकता है। सऊदी अरब और यूएई अपनी मजबूत अर्थव्यवस्था के जरिये ब्रिक्स से लाभ लेना चाहेंगे। पिछले कुछ समय से जिस तरह से ब्रिक्स देशों का मुख्य फोकस आर्थिक विकास और गरीबी उन्मूलन पर रहा है, मिस्र जैसी उभरती अर्थव्यवस्था को इसका लाभ मिल सकता है। ईरान के लिए आर्थिक और रणनीतिक, दोनों ही मोर्चों पर ब्रिक्स का साथ मिलना फायदेमंद होगा। पश्चिमी देशों द्वारा लगाए गए आर्थिक प्रतिबंधों के कारण ईरान अकेला पड़ गया था। अब ब्रिक्स देशों के साथ आने से उसकी अर्थव्यवस्था इससे उबर सकेगी। प्रतिबंधों के बावजूद ईरान का तेल उत्पादन बढ़ा है। मीडिया रिपोर्ट के अनुसार पिछले साल अकेले अगस्त माह में ईरान ने 2.2 करोड़ बैरल तेल का प्रतिदिन उत्पादन किया। ईरान ने इस तेल का अधिकांश हिस्सा चीन को बेचा है। सऊदी अरब के साथ भी अब ईरान के संबंध पहले जैसे शत्रुतापूर्ण नहीं हैं। गत वर्ष मार्च में चीन

की मध्यस्थता से दोनों देशों के बीच हुए समझौते के बाद ईरान अब पूरी तरह से खाड़ी के दूसरे देशों, लाल सागर और अफ्रीका में अपनी स्थिति मजबूत कर रहा है। ईरान का प्रवेश ब्रिक्स के लिए भी लाभकारी है। ईरान के चाबहार बंदरगाह के जरिये उत्तर-दक्षिण के देशों में कनेक्टिविटी बढ़ेगी। भारत पहले से ही चाबहार परियोजना से जुड़ा हुआ है।

पश्चिमी देशों का यह कहना सही नहीं है कि ब्रिक्स का अपना कोई साझा दृष्टिकोण नहीं है और यह केवल 'बातचीत की दुकान' है। ब्रिक्स के देश आज वैश्विक आर्थिक विकास के अगुआ बनकर उभर रहे हैं। ब्रिक्स की आलोचना करने के बजाय उन्हें इसके शिखर सम्मेलनों और बैठकों में उठाए जा रहे मुद्दों पर भी गौर करना चाहिए। इसमें शामिल देश बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था की वकालत करते हैं। इन देशों का मानना है कि संसाधनों पर कुछ गिने-चुने देशों का प्रभाव होने के बजाय वे समस्त मानवता के लिए उपलब्ध होने चाहिए। इसके ठीक विपरीत पश्चिमी देश विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और संयुक्त राष्ट्र जैसे विभिन्न निकायों पर नियंत्रण के पक्षधर रहे हैं। रूस-यूक्रेन संघर्ष के दौरान पश्चिम की पूंजीवादी ताकतों ने जिस तरह से रूस पर प्रतिबंध लगा कर उसे आर्थिक लेन-देन में मददगार स्विफ्ट प्रणाली से बाहर कर दिया, उससे विकासशील देशों की आशंका और अधिक बढ़ गई। इस प्रकार की मनमानी के चलते विकासशील देश नए विकल्प खोजने लगे। परिणामस्वरूप अब पश्चिम एशिया एवं उत्तरी अफ्रीका के देशों के प्रवेश के बाद ब्रिक्स वैश्विक जीडीपी का 29.6 प्रतिशत और दुनिया की कुल जनसंख्या के 46 प्रतिशत हिस्से का प्रतिनिधित्व करेगा। साथ ही 43.1 प्रतिशत तेल भंडार पर इसका नियंत्रण होगा। शायद यही वजह है कि अभी भी 30 से अधिक देश ब्रिक्स से जुड़ने के लिए आतुर हैं। उम्मीद है रूस की अध्यक्षता के दौरान कई और देश ब्रिक्स के बहुपक्षीय एजेंडे में शामिल होंगे। ऐसा होता है तो बहुध्रुवीय, बहुपक्षीय और टिकाऊ विश्व व्यवस्था की स्थापना की ब्रिक्स की आवाज और अधिक मुखर होगी।

राष्ट्रीय सहारा

Date:11-01-24

कोचिंग सेंटरों की मनमानी

संपादकीय

भ्रामक विज्ञापन देकर छात्रों और अभिभावकों का शोषण करने वाले कोचिंग सेंटर पर नकेल कसने का सरकार ने तैयारी शुरू कर दी है। केंद्रीय उपभोक्ता संरक्षण प्राधिकरण (सीसीपीए) द्वारा गठित कमेटी ने कोचिंग सेंटरों की मनमानी रोकने के लिए दिशा-निर्देश तय कर दिए हैं, और इस बाबत जो भी नियम-कानून होंगे वो सभी कोचिंग सेंटरों, भले ही वे ऑनलाइन हों या भौतिक रूप में हों, पर लागू होंगे। सीसीपीए उपभोक्ता हित में सक्रिय केंद्र सरकार का निकाय है, जो दृढ़ता से उपभोक्ताओं के अधिकारों की रक्षा करने में विश्वास रखता है। दरअसल, दिनोंदिन प्रतिस्पर्धी माहौल बढ़ने से अच्छे और

सम्मानजनक कॅरियर में जाना युवाओं के सामने बड़ी चुनौती के रूप में आ खड़ा हुआ है। इससे न केवल वे स्वयं, बल्कि उनके अभिभावक भी खासे चिंतित रहते हैं। इसी का फायदा उठाते हुए कुछ कोचिंग संस्थान झूठे दावों के बल पर उन्हें अपने यहां प्रवेश लेने को प्रेरित करते हैं। कहना गलत नहीं होगा कॅरियर बनाने के फेर में उनका खासा शोषण होता है, और किसी भी लोक कल्याणकारी सरकार में ऐसा होना दुखद है। शहर के शहर और बड़े महानगरों में खास पॉकेट्स यानी उपनगरों में तमाम प्रतिस्पर्धाओं और उच्च शैक्षणिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश की तैयारी कराने वाले कोचिंग सेंटर कुकुरमुत्ते की तरह उग आए हैं। सबसे बड़ी चिंता यह है कि इन पर कोई नियम-कानून नहीं है, और लाखों-करोड़ों के कारोबार की शक्ल अख्तियार कर चुका कोचिंग सेंटर खोलने का व्यवसाय बेरोक-टोक महत्वाकांक्षी छात्रों के भविष्य से खिलवाड़ कर रहे हैं। छात्रों को अपनी तरफ आकर्षित करने के लिए कुछेक कोचिंग संस्थानों द्वारा बड़ी परीक्षाओं में सफल रहे छात्रों की तस्वीर अपना छात्र रहे बताकर अखबारों में छपवाने की शिकायत प्रायः मिल जाती हैं। इस प्रकार छात्रों को गुमराह किया जाना किसी भी सूरत में क्षम्य नहीं है। पहले माना जाता था कि कोचिंग उन छात्रों की जरूरत होती है, जो पढ़ाई में बनिस्बत कमजोर होते हैं, लेकिन अब यह धारणा आधार खो चुकी है। दरअसल, आज का दौर हर क्षेत्र में कड़ी प्रतिस्पर्धा और चुनौती लेकर आया है, और आने वाला समय इससे भी ज्यादा प्रतिस्पर्धी रहने वाला है। इसलिए अभिभावक अपने बच्चों को प्रतिस्पर्धा में बेहतर प्रदर्शन करने में सक्षम बनाने की गरज से कोचिंग सेंटरों की ओर रुख करते हैं। बेशक, यह कोचिंग सेंटर में कुछ अच्छे और परिणामोन्मुखी सेंटर भी हैं, लेकिन शिक्षा-शिक्षण पर दाग लगाने वालों को चुन लेना होगा।